इकाई 5 तात्पर्य निर्णय के छः अंग

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 तात्पर्य निर्णय का अर्थ एवं अवधारणा।

5.2.1 तात्पर्य निर्णय के दार्शनिक आधार।

5.2.2 तात्पर्य-निर्णय के छः अंगों का विस्तृत परिचय।

5.3 सारांश

5.4 शब्दावली

5.5 सन्दर्भ-ग्रन्थ

5.6 बोध-प्रश्न

5.0 उद्देश्य

इस इकाई में तात्पर्य निर्णय के छः अंगों का अध्ययन कर लेने के बाद आप सभी-

- तात्पर्य-निर्णय के अर्थ एवं अवधारणा पर संक्षिप्त परिचय दे सकेंगे।
- शंकर के अद्वैत वेदान्त के स्वरूप का विश्लेषण कर सकेंगे।
- वेदान्तसार का प्रतिपाद्य विषय का उल्लेख करने में समर्थ हो सकेंगे।
- तात्पर्य-निर्णय के छः अंगों का विवेचन करने में समर्थ हो सकेंगे।
- तात्पर्य-निर्णय के दार्शनिक आधार पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखने में समर्थ हो सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना

इस इकाई के अन्तर्गत आप सभी वाद-परम्परा के अन्तर्गत तात्पर्य निर्णय के छः अंगों का अध्ययन करेंगे। तात्पर्य निर्णय के छः अंगों के विषय में जानने के लिये सर्वप्रथम हमें सर्वप्रथम दर्शन से परिचित होना आवश्यक है।

मनुष्य एक चिन्तनशील प्राणी है, विचार करना मनुष्य का एक विशिष्ट गुण है। विवेकशील मनुष्य विश्व की विभिन्न वस्तुओं को देखकर उनके स्वरूप को जानने का प्रयास करता रहता है और मनुष्य की बौद्धिकता उसे अनेक प्रश्नों का उत्तर जानने के लिये बाध्य करती है। ये प्रश्न विभिन्न प्रकार के हो सकते हैं, जैसे- विश्व का स्वरूप क्या है ? इसकी उत्पत्ति किस प्रकार और क्यों हुयी ? विश्व का कोई प्रयोजन है अथवा यह प्रयोजनहीन है ? आत्मा क्या है ? जीव क्या है ? ईश्वर है या नहीं ? ईश्वर का स्वरूप क्या है ? ईश्वर के अस्तित्व का क्या प्रमाण है ? जीवन का चरम लक्ष्य क्या है ? सत्ता का स्वरूप क्या है ? ज्ञान का साधन क्या है ? नैतिक निर्णय का विषय क्या है ? आदि।

दर्शन शब्द 'दृश' धातु से बना है जिसका अर्थ है जिसके द्वारा देखा जाये। भारत में दर्शन उस विद्या को कहा जाता है जिसके द्वारा तत्त्व का साक्षात्कार हो सके। भारत का दार्शनिक केवल तत्त्व की बौद्धिक व्याख्या से ही सन्तुष्ट नहीं होता बल्कि वह तत्त्व की अनुभूति प्राप्त करना चाहता है। भारतीय-दर्शन तत्त्व के साक्षात्कार में आस्था रखता है इसलिये इसे तत्त्व-दर्शन भी कहा जाता है। भारतीय-दर्शन को मोक्ष-दर्शन भी कहा जाता है। मोक्ष का अर्थ है दु:ख से निवृत्ति। मोक्ष को परम लक्ष्य मानने के कारण ही यह मोक्ष-दर्शन कहलाता है। मोक्ष, जीव, ब्रह्म आदि तत्त्वों को तात्पर्य निर्णय द्वारा भली-भांति समझा जा सकता है।

इस इकाई में वाद-परम्परा के अन्तर्गत तात्पर्य निर्णय के छः अंगों का अध्ययन आप सभी को करना है। आइये हम इस विषय को क्रमपूर्वक अध्ययन करते हैं।

5.1 तात्पर्य निर्णय का अर्थ एवं अवधारणा

भारतीय चिन्तन-परम्परा सदैव से ही परमतत्त्व की व्याख्या में निरन्तर प्रयासरत रही है। दार्शनिक क्षेत्र में किसी भी सत्वतत्त्व ज्ञान के लिये युक्तियुक्त चिन्तन करने का कार्य सदैव होता रहा है। इसके लिये वह शास्त्रों का अध्ययन करता है अथवा गुरु के सानिध्य में बैठकर तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त करता है, तात्पर्य-निर्णय इस कार्य में सहायक होता है।

तात्पर्य-निर्णय-यह तात्पर्य क्या है ? इसका उत्तर है कि किसी विषयवस्तु को भली-भांति जानने के लिये शास्त्रों का अध्ययन करना अथवा गुरु के समीप बैठकर एकाग्र होकर उस तत्त्व के गूढ़ अर्थ को सुनना, 'श्रवण' है। श्रवण का तात्पर्य श्रुति परम्परा से है। ब्रह्म या जीव अथवा किसी सत्व पदार्थ के प्रति जिज्ञासा होने पर गुरु के द्वारा उपदेशों का भली-भांति श्रवण करना, श्रवण के उपरान्त विभिन्न सहायक अंगों के माध्यम से उस तत्त्व या सत्व का सही निर्णय करना ही तात्पर्य-निर्णय है। उस अद्वितीय ब्रह्मरूप वस्तु का ज्ञान प्राप्त करना ही तात्पर्य है और लिंगों द्वारा निश्चय करना निर्णय है। इसका अर्थ यह हुआ कि अद्वितीय ब्रह्म के स्वरूप के प्रतिपादन में 6 लिंग- 1.उपक्रम और उपसंहार 2.अभ्यास 3.अपूर्वता 4.फल 5.अर्थवाद 6.उपपत्ति। इन छः लिंगों की सहायता से जब **साधक तात्पर्य ग्रहण करता है और अध्ययन को सफल बनाता है।**

भारतीय ज्ञान-मीमांसा, तत्त्व-मीमांसा साथ-साथ चलने वाली है। ज्ञान-मीमांसा का मूल व्यापार ज्ञान के स्वरूप एवं प्रमाणिकता का प्रतिपादन करना है। यह तात्पर्य-निर्णय द्वारा ही सम्भव है। समस्त जागतिक कार्य-व्यापार का मूल 'ज्ञान' ही है तथा वही 'ज्ञेय' का प्रकाशक भी है। 'ज्ञाता' और 'ज्ञेय' के बिना 'ज्ञान' सम्भव नहीं है। जीव, जगत् और ब्रह्म के वास्तविक स्वरूपों का ज्ञान तात्पर्य-निर्णय से प्रतिपादित हो सकता है।

5.2.1 तात्पर्य-निर्णय के दार्शनिक आधार

तात्पर्य-निर्णय के लिये जिन दर्शनों का अध्ययन किया जा सकता है। आइये हम उन्हें क्रम से सामान्य परिचय प्राप्त करते हैं। भारत में जितने दर्शनों का विकास हुआ है उनमें सबसे महत्त्वपूर्ण दर्शन वेदान्त-दर्शन भी है। इसके महत्त्व को इस प्रकार देखा जा सकता है कि यूरोप के विद्वान् बहुत काल तक भारतीय दर्शन का अर्थ वेदान्त-दर्शन ही समझते थे। वेदान्त-दर्शन का आधार उपनिषद् कहा जाता है। पहले वेदान्त शब्द का प्रयोग उपनिषद् के लिये होता था। क्योंकि उपनिषद् वेद के अंन्तिम भाग थे। वेद का अन्त होने के कारण उपनिषदों को ही वेदान्त कहा

जाता था। आगे चलकर उपनिषदों से जितने दर्शनों का विकास हुआ उन सभी को वेदान्त के नाम से जाना गया। वेदान्त-दर्शन को इसी अर्थ में वेदान्त-दर्शन कहा जाता है।

वेदान्त-दर्शन का आधार बादरायण का ब्रह्मसूत्र माना जाता है। ब्रह्मसूत्र उपनिषदों के विचारों में सामंजस्य लाने के उद्देश्य से लिखा गया था। उपनिषदों की संख्या अनेक थी। उपनिषदों की शिक्षा को लेकर के विद्वानों में मतभेद था। कुछ लोगों का कहना था कि उपनिषद् की शिक्षाओं में संगति नहीं है। जिस बात की शिक्षा एक उपनिषद् में दी गयी है, वहीं दूसरे उपनिषद् में उसी बात को अन्य प्रकार से कहा गया। कुछ विद्वानों का मत था कि उपनिषद् में एकमत की शिक्षा है तो कुछ लोगों का कहना था कि उपनिषद् में द्वैतवाद की शिक्षा है। बादरायण ने कुछ लोगों के दृष्टिकोण में जो विरोध था उसे दूर करने के लिये ब्रह्मसूत्र की रचना की। उन्होंने स्पष्ट किया कि सम्पूर्ण उपनिषद् विचारों में एकमतता है। उपनिषद् की उक्तियों में जो विषमता दिखायी पड़ती है। वह दोष उपनिषदों का नहीं बल्कि जो उसका अध्ययन कर रहा है और उसको ठीक प्रकार से समझ नहीं पा रहा है, उसमें दोष है। शास्त्र को यदि भली-भांति हम समझ नहीं पाते तो इसमें शास्त्र का दोष नहीं होता अपितु शास्त्र का अध्ययन करने वाले अल्पज्ञानी का दोष होता है। ब्रह्मसूत्र को 'ब्रह्मसूत्र' कहा जाता है क्योंकि इसमें ब्रह्मसिद्धान्त की व्याख्या हुयी है। ब्रह्मसूत्र को वेदान्तसूत्र भी कहा जाता है। क्योंकि वेदान्त-दर्शन ब्रह्मसूत्र से ही प्रतिफलित हुआ है। इन दोनों नामों के अतिरिक्त से शारीरिकसूत्र शारीरिकमीमांसा उत्तरमीमांसा भी कहा जाता है।

वेदान्तसार का प्रतिपाद्य विषय-

वेदान्तसार के रचयिता सदानन्द 17वीं के उत्तरार्ध के काश्मीरक सदानन्द से स्पष्टरूप से भिन्न हैं। काश्मीरक सदानन्द प्रसिद्ध "अद्वैतब्रह्मसिद्धि" के रचयिता हैं। स्वरूपप्रकाश और ईश्वरवाद उनकी अन्य दो रचनायें हैं। वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय के सरस्वती भवन पुस्तकालय में स्वरूपप्रकाश की पाण्डुलिपि उपलब्ध है। यह 30 पन्नों की हस्तप्रति है। काश्मीरक सदानन्द के गुरु 17वीं शताब्दी के उत्तरार्ध के ब्रह्मानन्द थे। जिन्होंने मधुसूदन सरस्वती की अद्वैतसिद्धि पर गुरुचन्द्रिका तथा लघुचन्द्रिका टीकायें लिखी थी, जबकि वेदान्तसार के रचयिता सदानन्द योगीन्द्र के गुरु वेदान्तसार के द्वितीय श्लोक के अनुसार आनन्द थे और इस प्रकार दोनों कभी एक नहीं हो सकते। इस प्रकार सदानन्द जिन्होंने जो वेदान्तसार के रचयिता हैं वह काश्मीरक सदानन्द से अलग हैं।

अद्वैत-वेदान्त के प्रमुख सिद्धान्त-प्रतिपादक और प्रकरण-ग्रन्थ में सबसे संक्षिप्त एवं लघुकाय, साथ ही स्पष्ट और सुबोध वेदान्तसार ही है। यही गुण इसकी लोकप्रियता का कारण है। अद्वैतवेदान्त के प्रमुख सिद्धान्तों को संक्षेप में जानने-समझने के लिये इससे अधिक अच्छा अन्य कोई ग्रन्थ नहीं, इसमें अद्वैत-दर्शन की दोनों धाराओं- प्रतिबिम्बवाद और अवच्छेदवाद का समन्वय करते हुये अध्यारोपापवाद की प्रक्रिया द्वारा सच्चिदानन्द, अनन्त, अद्वय ब्रह्मवस्तु में अज्ञानादि सकल जड़समूह रूप जगत्प्रपञ्च का आरोप तथा उसके ज्ञान द्वारा इस अज्ञान आदि जड़समूह का अपवाद, उसे वस्तु अर्थात् ब्रह्म के ज्ञान के बहिरंग 'साधन-चतुष्टय' तथा अतरंग 'श्रवण-मनन-निदिध्यासन' से उत्पन्न होने वाली सविकल्प अर्थात् सम्प्रज्ञात समाधि तथा उसकी परिपक्वतावस्था रूप निर्विकल्पक या असम्प्रज्ञात या निर्बीज समाधि, एवं उसकी भी फलभूत जीवन्मुक्ति एवं अन्ततः विदेहमुक्ति इत्यादि सारे प्रमुख सिद्धान्तों का ग्रन्थकार ने बड़ी ही कुशलता के साथ संक्षिप्त किन्तु स्पष्ट विवेचन प्रस्तुत किया है। वेदान्तसार की इस महनीयता से प्रभावित होकर इसकी रचना के सौ-पचास वर्षों के भीतर ही सदानन्द योगीन्द्र के

प्रशिष्य नृसिंह सरस्वती एवं उसके थोड़े ही अन्तराल के बाद रामतीर्थ यति ने अपनी-अपनी व्याख्यायें प्रस्तुत कीं। रामतीर्थ की 'विद्वान्मनोरञ्जनी' व्याख्या के अध्ययन-चिन्तन-मनन से ही वेदान्तसार की गहनता और गम्भीरता का सही अनुमान लगाया जा सकता है। उपनिषद् श्रुतियों के कितने सन्दर्भ एवं महामहनीय आदि शंकराचार्य के भाष्यों से लेकर माधवाचार्य विद्यारण्य की पञ्चदशी तक के कितने प्रामाणिक वचन और कथन इस छोटे से प्रकरण ग्रन्थ में दिखायी देते हैं। (वेदान्तसार, भूमिका, पृष्ठ 19,20)।

वेदान्तसार के प्रमुख विषयों का संक्षेप में वर्णन इस प्रकार आप लोगों के सामने है-

1) **जगतविचार**- अद्वैत-वेदान्त के अनुसार ब्रह्म ही एकमात्र सत्य है। जगत् मिथ्या है तथा जीव और ब्रह्म अभिन्न हैं। जगत् को रस्सी में दिखायी देने वाले सांप के समान माना है। यद्यपि जगत् मिथ्या है फिर भी जगत् का कुछ न कुछ आधार है। जिस प्रकार रस्सी में दिखायी देने वाला सांप का आधार रस्सी है इसी तरह विश्व का आधार ब्रह्म है। अतः ब्रह्म विश्व का अधिष्ठान है। जिस प्रकार सांप रस्सी के वास्तविक स्वरूप पर आवरण डाल देता है उसी प्रकार जगत् ब्रह्म के वास्तविक स्वरूप पर आवरण डाल देता है। उसके रूप का विक्षेप जगत् यथार्थ प्रतीत होने लगता है। शंकर के मतानुसार सम्पूर्ण जगत् ब्रह्म का विवर्त मात्र है। जिस प्रकार सांप रस्सी का विवर्त है उसी प्रकार विश्व भी ब्रह्म का विवर्त है। देखने में ऐसा मालूम होता है कि विश्व ब्रह्म का रूपान्तरित रूप है परन्तु यह केवल प्रतीति मात्र है। ब्रह्म सत्य है विश्व असत्य है। अतः सत्य ब्रह्म का रूपान्तरण असत्य वस्तु में कैसे हो सकता है ? ब्रह्म एक है विश्व नाना रूपात्मक है। इस तरह के अनेक प्रश्न भी उपस्थित होते हैं। आचार्य शंकर विवर्तवाद के समर्थक हैं।

2) **माया और अविद्या सम्बन्धी विचार-**

दर्शन में माया और अविद्या का प्रयोग एक ही अर्थ में हुआ है। जिस प्रकार आत्मा और ब्रह्म में तादात्म्य है उसी प्रकार माया और अविद्या अभिन्न हैं। शंकर ने माया, अविद्या, अध्यास, अध्यारोप, भ्रान्ति, विवर्त, भ्रम, नामरूप अव्यक्त, मूल प्रकृति आदि शब्दों का एक ही अर्थ में प्रयोग किया है। परन्तु बाद के वेदान्तियों ने माया और अविद्या में भेद किया है। उनका कहना है कि माया भावात्मक है जबकि अविद्या निषेधात्मक है। माया को भावात्मक इसलिये कहा जाता है कि माया के द्वारा ब्रह्म सम्पूर्ण विश्व का प्रदर्शन करता है। माया विश्व को प्रस्थापित करती है। अविद्या इसके विपरीत ज्ञान के अभाव को संकेत करने के कारण निषेधात्मक है। माया और अविद्या में दूसरा अन्तर यह है कि माया ईश्वर को प्रभावित करती जबकि अविद्या जीव को प्रभावित करती है। माया और अविद्या में तीसरा अन्तर यह है कि माया का निर्माण मूलत: सत्वगुण से हुआ है जबकि विद्या का निर्माण सत्व, रज और तम तीनों गुणों से हुआ है। माया का स्वरूप सात्विक है परन्तु अविद्या का स्वरूप त्रिगुणात्मक है।

3) **आत्मा विचार**- चैतन्य आत्मा का स्वरूप है। यह दूसरे ढंग से प्रमाणित किया जा सकता है आत्मा को हम तीन रूपों में दैनिक जीवन में देखते हैं-

क) जागृत अवस्था- जागृत अवस्था में एक व्यक्ति को बाह्य जगत् की चेतना रहती है। जागृत् अवस्था में हमें टेबल, पुस्तक, पंखा आदि वस्तुओं की चेतना रहती है।

ख) स्वप्न अवस्था- स्वप्न अवस्था में भीतरी विषयों को स्वप्न रूप में चेतना रहती है।

ग) **सुषुप्ति अवस्था**- सुषुप्त अवस्था में यद्यपि बाहरी और भीतरी विषयों की चेतना नहीं रहती है फिर भी किसी न किसी रूप में चेतना अवश्य रहती है, तभी तो कहा जाता है मैं खूब आराम से सोया। इस प्रकार तीनों अवस्थाओं में चैतन्य सामान्य है। चैतन्य ही स्थाई तत्त्व है। इस प्रकार विभिन्न प्रकार से अद्वैत-वेदान्त यह स्पष्ट करता है कि चैतन्य आत्मा का स्वरूप लक्षण है। चैतन्य आत्मा का गुण नहीं बल्कि स्वभाव है। यहां पर चैतन्य का अर्थ किसी विषय का चैतन्य नहीं बल्कि शुद्ध चैतन्य है। चैतन्य के साथ आत्मा में सत्ता भी है। इसका कारण यह है कि सत्ता चैतन्य में सर्वथा वर्तमान रहती है। चैतन्य के साथ-साथ आत्मा में आनन्द भी है। साधारण वस्तु में जो आनन्द रहता है वह क्षणिक रहता है। परन्तु आत्मा का आनन्द शुद्ध और स्थाई है। इसीलिये इसे सच्चिदानन्द कहा है। ब्रह्म की व्याख्या करते हुये हम इस ब्रह्म को सच्चिदानन्द रूप में देखते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि अद्वैत-वेदान्त का जो आत्मा का स्वरूप है वह सत्-चित-आनन्द= सच्चिदानन्द रूप में एक है।

यद्यपि आत्मा एक है फिर भी अज्ञान के फलस्वरूप वह अनेक प्रतीत होती है। जिस प्रकार चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब जल की विभिन्न सतहों पर पड़ने से यह अनेक प्रतीत होता है उसी प्रकार एक आत्मा का प्रतिबिम्ब अविद्या पर पड़ने से वह अनेक प्रतीत होता है।

4) **जीव विचार**- जीव संसार के कर्मों में भाग लेता है। इसलिये उसे कर्ता कहा जाता है। वह विभिन्न विषयों का ज्ञान प्राप्त करता है। इसलिये उसे ज्ञाता कहा जाता है। सुख-दुख की अनुभूति जीव को होती है। वह कर्म-नियम के अधीन है। अपने कर्मों का फल प्रत्येक जीव को भोगना पड़ता है। शुभ और अशुभ कर्मों के कारण ही वह पाप और पुण्य का भागी भी होता है।

आत्मा को मुक्त माना है। परन्तु जीव इसके विपरीत बन्धन ग्रस्त है। अपने प्रयासों से जीव मोक्ष को अपना सकता है। जीव को अमर माना गया है। शरीर के नष्ट हो जाने के बाद जीवात्मा में लीन हो जाता है।

जीव, आत्मा का वह रूप है जो देह से युक्त है। उसके तीन शरीर हैं, वह है- स्थूलशरीर, लिंगशरीर और कारणशरीर। जीव, शरीर और प्राण का आधार स्वरूप है।

जब आत्मा का- अज्ञान के वशीभूत होकर बुद्धि से सम्बन्ध होता है तब आत्मा जीव का स्थान ग्रहण करती है। जब तक जीव में ज्ञान का उदय नहीं होगा, वह अपने को बुद्धि से भिन्न नहीं समझ सकती। इसलिये अद्वैत-वेदान्त ने इस सम्बन्ध का नाश करने के लिये ज्ञान पर बल दिया है।

5) **बन्धन और मोक्ष विचार**- ज्ञान की प्राप्ति वेदान्त-दर्शन के अध्ययन से ही प्राप्त हो सकती। परन्तु वेदान्त को अध्ययन करने के लिये साधक को साधना की आवश्यकता होती है। उसे भिन्न-भिन्न नियमों का पालन करना होता है तभी वह वेदान्त का सच्चा अधिकारी बनता है। साधन-चतुष्टय यहां पर इसके लिये बतलाये गये हैं-

क) **नित्यानित्यवस्तुविवेक**- साधक को नित्य और अनित्य वस्तुओं में भेद करने का विवेक होना चाहिये।

ख) **इहामुत्रार्थ-भोग-विराग**- साधक को अलौकिक और पारलौकिक भोगों की कामना का परित्याग करना चाहिये।

ग) शमदमादि-साधन-सम्पन्न-

साधक को शम, दम, श्रद्धा, समाधान, उपरति और तितिक्षा इन छः साधनों को अपनाना चाहिये। शम का मतलब है- 'मन का संयम'। दम का तात्पर्य है 'इंद्रियों का नियन्त्रण'। शास्त्र के प्रति निष्ठा का होना श्रद्धा कहा जाता है। समाधान, चित्त का ज्ञान के साधन में लगाने को कहा जाता है। उपरति विक्षेपकारी कार्यों से विरत होने को कहा जाता है। सर्दी, गर्मी सहन करने के अभ्यास को तितिक्षा कहा जाता है।

घ) मुक्षुत्वम्- साधक को मोक्ष प्राप्त करने का दृढ़ संकल्प होना चाहिये।

जो साधक इन चार साधनों से युक्त होता है उसे वेदान्त की शिक्षा लेने के लिये ऐसे गुरु के चरणों में उपस्थित होना चाहिये जिन्हें ब्रह्मज्ञान की अनुभूति प्राप्त हो गयी हो। साधक को श्रवण, मनन, निदिध्यासन का आश्रय लेना चाहिये। गुरु के उपदेशों को सुनने को श्रवण कहा जाता है। उपदेशों पर तार्किक दृष्टि से विचार करने को मनन कहा जाता है और निरन्तर ध्यान रखना निदिध्यासन कहलाता है।

इन चार साधनों को साधने से पूर्व संचित संस्कार नष्ट हो जाते हैं। जिसके फलस्वरूप ब्रह्म की सत्यता प्राप्त हो जाती है। तब साधक को गुरु 'तत्त्वमसि' अर्थात् 'तू ही ब्रह्म है' की दीक्षा देते हैं। जब साधक इस तथ्य की अनुभूति करने लगता है तब वह ब्रह्म का साक्षात्कार कर पाता है। जिसके फलस्वरूप वह कहता है 'अहम् ब्रह्मास्मि' जीव और ब्रह्म का भेद हट जाता है। बन्धन का अन्त हो जाता है और मोक्ष की अनुभूति हो जाती है। (भारतीय दर्शन की रूपरेखा, प्रो0 हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, पृष्ठ 296, 300, 309-311, 3013-14)।

5.2.2 तात्पर्य-निर्णय के छः अंगों का विस्तृत परिचय।

अभी तक आप सभी ने अद्वैत वेदान्त-दर्शन के परिचय और अद्वैत सिद्धान्तों का संक्षेप रूप से प्रतिपादन करने वाले वेदान्तकार सदानन्द योगीन्द्र द्वारा रचित वेदान्तसार का अध्ययन और उसके प्रतिपादित विषयों का आपने अध्ययन किया। आपके इस इकाई में तात्पर्य के छः अंग हैं। जिसे हम सभी को अध्ययन करना है यह तात्पर्य के छ: अंग ब्रह्मज्ञान के लिये गुरु के समीप जाकर के गुरु के उपदेशों को सुनना और श्रवण, मनन, निदिध्यासन इस तीन प्रणाली का आश्रय लेना है। श्रवण का तात्पर्य गुरु के उपदेश को भली-भांति सुनना और फिर सुन करके उस पर भली-भांति विचार करना मनन है तथा बार-बार उसका निरन्तर अभ्यास करते रहना निदिध्यासन है। इन श्रवण, मनन और निदिध्यासन में श्रवण के अन्तर्गत छः प्रकार के अंगों का वर्णन आता है-

एवंभूतस्वस्वरूपचैतन्यसाक्षात्कारपर्यन्तं
श्रवणमननिदिध्यासनसमाध्यनुष्ठानस्यापेक्षितत्वात्तेऽपि प्रदश्-र्यन्ते।
श्रवणं नाम षड्विधलिङ्गैरशेषवेदान्तानामद्वितीये वस्तुनि तात्पर्यावधारणम्।
लिङ्गानि तूपक्रमोपसंहाराभ्यासापूर्वताफलार्थवादोपपत्त्याख्यानि।। (वेदान्तसार 64)

इस प्रकार आप सभी देख सकते हैं कि अपने स्वरूपभूत चैतन्य का इस प्रकार साक्षात्कार होने तक श्रवण, मनन, निदिध्यासन और समाधि का अनुष्ठान अभ्यास अपेक्षित होने के कारण उन्हें सम्पूर्ण वेदान्तवाक्य का अद्वितीय ब्रह्म रूप वस्तु के प्रतिपादन में तात्पर्य है और इस प्रकार से प्रकार के लिंगों से निश्चय करना श्रवण है। यह छः लिंग हैं- 1.उपक्रम और उपसंहार 2. अभ्यास 3. अपूर्वता 4. फल 5. अर्थवाद 6. उपपत्ति।

1) उपक्रमोपसंहार-

तत्र प्रकरणप्रतिपाद्यस्यार्थस्य तदाद्यन्तयोरुपपादनमुपक्रमोपसंहारौ यथा छान्दोग्ये षष्ठाध्याये प्रकरणप्रतिपाद्यस्याद्वितीयवस्तुन: 'एकमेवाद्वितीयम्' इत्यादौ 'ऐतदात्म्यमिदं सर्वम्' इत्यन्ते च प्रतिपादनम्। (वेदान्तसार- 65)

अर्थात् इनमें से उपक्रम और उपसंहार यह है कि किसी प्रकरण के प्रतिपाद्य अर्थ का उसके आरम्भ और अन्त में उत्पादन करना, जैसे छान्दोग्योपनिषद् के छठे अध्याय में प्रकरण के प्रतिपाद्य आदित्य ब्रह्मरूप वस्तु का 'एकमेवाद्वितीयम्' अर्थात् 'एकमात्र अद्वितीय सत्य ही था' इन शब्दों के द्वारा प्रारम्भ में और 'एतदात्म्यमिदं सर्वम्' अर्थात् यह सारा संसार जगत्प्रपञ्च सत्संज्ञक आत्मा स्वरूप वाला है, इन शब्दों द्वारा अन्त में प्रतिपादन किया गया है।

2) अभ्यास -

प्रकरणप्रतिपाद्यस्य वस्तुनस्तन्मध्ये पौन:पुन्येन प्रतिपादन मद्रास:।

(वेदान्तसार- 65)

अर्थात् प्रकरण प्रतिपाद्य वस्तु का उसके मध्य में पुनः-पुनः प्रतिपादन करना अभ्यास है, जैसे वहीं प्रकरण प्रतिपाद्य अद्वितीय ब्रह्मवस्तु का उस प्रकरण के मध्य में 'तत्त्वमसि' इस प्रकार से नौ बार प्रतिपादन किया गया है।

3) अपूर्वता-

प्रकरणप्रतिपाद्यस्याद्वितीयवस्तुन: प्रमाणान्तराविषयीकरणमपूर्वता। यथा तत्रैवाद्वितीयवस्तुनो मानान्तराविषयीकरणम्। (वेदान्तसार- 65)

अर्थात् प्रकरण प्रतिपाद्य वस्तु का श्रुति के अतिरिक्त किसी अन्य प्रमाण द्वारा विषय न बनाया जाना अर्थात् किसी अन्य प्रमाण से बोध या ज्ञान न होना अपूर्वता है, जैसे- उसी प्रकरण में अद्वितीय वस्तु का किसी अन्य प्रमाण से न जान पाना, जैसे- 'आचार्यवान् पुरुषो वेद' इत्यादि कथन से सूचित होता है।

'अज्ञातज्ञापकं शास्त्रम्' अर्थात् शास्त्र केवल अज्ञात वस्तु का ज्ञापक होता है, यह सिद्धान्त है मीमांसाशास्त्र का, जिसे वेदान्त भी मानता है। उनके अनुसार श्रुति में केवल उन्हीं विषयों का कथन है जो तर्क और प्रत्यक्ष से अगम्य हैं। श्रुति लोकसिद्ध वस्तु का प्रतिपादन नहीं करती। उपनिषदों का प्रतिपाद्य अद्वितीय ब्रह्म लोकसिद्ध भी नहीं है और तर्कादि से स्वतन्त्र रूप से ज्ञातव्य भी नहीं है। इस प्रकार श्रुति या आगम के अतिरिक्त किसी भी प्रमाण, तर्क और युक्ति का स्वतन्त्र या पृथक् रूप से विषय न होने के कारण ही अद्वितीय ब्रह्म की 'अपूर्वता' सिद्ध होती है। ऐसे तो ब्रह्म स्वयंप्रकाश होने से सामान्यतः शास्त्र का भी विषय नहीं बन सकता है, फिर भी उसे 'औपनिषद्' अर्थात् केवल उपनिषदों के द्वारा जाने गये इस कारण से कहा जाता है, क्योंकि उपनिषदों के द्वारा ब्रह्म का प्रतिपादन विषय रूप से नहीं अपितु प्रत्यगात्माऽभिन्न होने के कारण अविषय रूप से ही किया जाता है। प्रत्यगात्मा तो विषय नहीं अपितु विषयी है, तब उससे अभिन्न ब्रह्म भी अविषय ही है। अपूर्वता का तात्पर्य है कि ब्रह्म को किसी शास्त्र के द्वारा, तर्क के द्वारा या विभिन्न प्रकार के प्रमाणों के द्वारा नहीं जाना जा सकता है क्योंकि ब्रह्म स्वयं अपूर्व है, प्रकाशित है। **सरल शब्दों में वह ज्ञान जो आपको पूर्व ज्ञात नहीं हुआ है तथा अन्य साधन से नहीं हो सकता है वह अपूर्व है।**

4) फल-फलं तु प्रकरणप्रतिपाद्यस्यात्मज्ञानस्य तदनुष्ठानस्य वा तत्र तत्र श्रूयमाणं प्रयोजनम्। यथा तत्र 'आचार्यवान् पुरुषो वेद तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्येऽथ सम्पत्स्य' इत्यद्वितीयवस्तुज्ञानस्य तत्प्राप्ति: प्रयोजनं श्रूयते।

(वेदान्तसार- 65)

किसी प्रकरण के द्वारा प्रतिपाद्य आत्मज्ञान का अथवा आत्मज्ञान के लिये किये जाने वाले साधनानुष्ठान का जो प्रयोजन उस-उस प्रकरण में प्रतिपादित होता है, वही 'फल' कहलाता है। जैसे-**'तस्य तावदेवचिरं यावन्न विमोक्ष्येऽथ सम्पत्स्ये'** (छान्दोग्योपनिषद् 6/14/8)

अर्थात् 'आचार्यवान् पुरुष ही आत्मा को जानता है। उसके लिये तभी तक देर है जब तक वह शरीर के बन्धन से मुक्त नहीं होता, तदनन्तर तो वह सत्सम्पन्न अर्थात् ब्रह्मभाव को प्राप्त हो जाता है', आदि के द्वारा अद्वितीय वस्तु के ज्ञान का प्रयोजन उसकी प्राप्ति बताया गया है और इसी को फल कहते हैं।

5) अर्थवाद-

प्रकरणप्रतिपाद्यस्य तत्र तत्र प्रशंसनमर्थवाद:। यथा तत्रैव "उत तमादेशमप्राक्ष्यो येनाश्रुतं श्रुतं भवत्यमतं मतमविज्ञातं विज्ञातम्" इत्यद्वितीयवस्तुप्रशंसनम्।

(वेदान्तसार- 65)

प्रकरण के प्रतिपाद्य विषय की उसमें स्थान-स्थान पर प्रशंसा 'अर्थवाद' है। जैसे-

"उत तमादेशमप्राक्ष्यो येनाश्रुतं श्रुतं भवत्यमतं मतमविज्ञातं विज्ञातम्" उत तमादेशमप्राक्ष्यो येनाश्रुतं श्रुतं भवत्यमतं मतमविज्ञातं विज्ञातम्"

(छान्दोग्योपनिषद् 6/1/3)

अर्थात् क्या तुमने आचार्य से उस आदेश के विषय में पूछा जिससे न सुना हुआ भी सुना हुआ, न विचारा गया भी विचारा हुआ तथा जाना हुआ जाना हुआ हो जाता है अर्थात् वह आदेश है कि ब्रह्म को जानना, क्या तुमने आचार्य से उसे आदेश के विषय में पूछा है ? इन शब्दों के द्वारा अद्वितीय ब्रह्मरूप वस्तु की प्रशंसा की गयी है।

6) उपपत्ति- प्रकरणप्रतिपाद्यार्थसाधने तत्र तत्र श्रूयमाणा युक्तिरुपपति:। यथा तत्र "यथा सोम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातं स्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येवं सत्यम्" इत्यादावद्वितीयवस्तु-साधने विकारस्य वाचारम्भणमात्रत्वे युक्ति: श्रूयते। (वेदान्तसार- 65)

अर्थात् प्रकरण के द्वारा प्रतिपाद्य अर्थ को सिद्ध या प्रमाणित करने के लिये स्थान-स्थान पर वर्णन युक्ति ही उपपत्ति है, जैसे-**"यथा सोम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृन्मयं विज्ञातं स्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येवं सत्यम्"** (छान्दोग्योपनिषद् 6/1/4) अर्थात् हे सौम्य! जिस प्रकार मृतिका (मिट्टी) के एक पिण्ड को जान लेने मात्र से उसके विकार या कार्य बहुत सारे पदार्थ का ज्ञान हो जाता है, विकार कार्य तो वाणी से उत्पन्न होने वाला नाम मात्र है। सत्य तो केवल कारण भूत मृतिका या मिट्टी ही है इत्यादि शब्दों के द्वारा अद्वितीय वस्तु को सत्य सिद्ध या प्रमाणित करने के लिये समस्त विकारों और कार्यों के केवल वाणी का विकार तदाश्रित होने में युक्ति प्रस्तुत की गयी है।

उपपत्ति इसका अर्थ है युक्ति या तर्क अद्वितीय ब्रह्म की सत्ता की सिद्धि में जो पंक्ति या युक्ति के आधार पर दी है वह इस प्रकार है- मिट्टी के बने हुये घड़े, सकोरे आदि जितने भी

कार्य हैं, वे सब मिट्टी ही है। उससे अलग कुछ भी नहीं है। घड़ा, सकोरा आदि नाम केवल वाणी के कार्य हैं। इस प्रकार कार्यों की वस्तुतः कोई सत्ता नहीं वे नाममात्र हैं, मिथ्या हैं। सत्य तो केवल मिट्टी रूप उनका कारण ही है इस प्रकार ब्रह्म रूप कारण से उत्पन्न यह सारा चराचर जगत् रूप कार्य परमार्थ है। इससे पृथक् जगत् की कोई सत्ता नहीं है। इस प्रकार कार्य के स्व कारण से अभिन्न होने पर ही एक के विज्ञान से सर्वविज्ञान की उक्ति प्रतिज्ञा सिद्ध होती है। जगत् का ब्रह्म से सम्बन्ध सिद्ध होने से ही ब्रह्म का अद्वितीय होना भी सिद्ध होता है।

प्रकार आप सभी ने यह देखा कि उस ब्रह्म स्वरूप को जानने के लिये जो साधन कहे गये हैं। श्रवण, मनन और निदिध्यासन। उनमें से श्रवण के द्वारा कैसे ब्रह्म को जाना जाता है, उस श्रवण के अन्तर्गत यह छः लिंग आते हैं जिनको क्रमश: आप सभी ने अध्ययन किया है।

5.3 सारांश

इस इकाई के अन्तर्गत आप सभी कथा के स्वरूप एवं प्रकार का विस्तारपूर्वक अध्ययन कर लिया है। इस प्रकार यहां आप सभी ने तात्पर्य के छः अंगों का विस्तारपूर्वक अध्ययन किया।

तात्पर्य के छः अंगों का विस्तारपूर्वक वर्णन सदानन्द योगीन्द्र के वेदान्तसार नामक ग्रन्थ में देखने को मिलता है। आपने यह अध्ययन किया कि श्रवण के अन्तर्गत तात्पर्य के छः अंगों के द्वारा ब्रह्म को जानने के लिये क्रमशः एक-एक करके अद्वितीय ब्रह्म को जान पाते हैं। आप सभी ने यहां स्पष्ट रूप से यह देखा कि वेदान्त में विभिन्न श्रुति उक्तियों के द्वारा ब्रह्म की सिद्धि को प्रमाणित किया गया है। अद्वैतवेदान्त के प्रमुख सिद्धान्तों को संक्षेप में जानने-समझने के लिये इससे अधिक अच्छा अन्य कोई ग्रन्थ नहीं। वेदान्तसार पूर्णरूप से आचार्य शंकर के अद्वैतवाद पर आश्रित है। इसमें ब्रह्म ही एकमात्र ऐसा तत्त्व है जिसको साधन जानने के लिये साधन-चतुष्ट्य का आश्रय लेता है। इन साधन-चतुष्ट्य को अध्ययन कर चुके हैं। आपने देखा कि पहले साधक को 'तत्त्वमसि' द्वारा ब्रह्मज्ञान के लिये श्रुतियों, उक्तियों द्वारा प्रतिपादन किया गया है। तत्पश्चात् 'अहं ब्रह्मास्मि' जीव और ब्रह्म का ज्ञान के द्वारा साधक ब्रह्मरूप हो जाता है। ब्रह्म को सच्चिदानन्द स्वरूप है। यह स्वयंसिद्ध है, अपूर्व है इसको किसी प्रमाण या उक्ति द्वारा नहीं जा सकता है। इस ब्रह्म का ज्ञान मात्र श्रुतियों से ही सम्भव है। श्रुति उक्ति द्वारा जिस ब्रह्म को जानने की बात कही गयी है वह गुरु उपदेश से ही सम्भव है। गुरु द्वारा ब्रह्म उपदेश होने पर श्रवण माध्यम से साधक ब्रह्मज्ञान प्राप्त करता है। आपने यह अध्ययन किया है कि श्रवण में छः अंगों द्वारा क्रम से ब्रह्मप्राप्ति की ओर गमन करता है। आपने यह अध्ययन किया कि यह सम्पूर्ण चराचर जगत् उस ब्रह्म का कार्य है। इसके लिये एक दृष्टान्त उपस्थित है कि मिट्टी से बने घड़े, सकोरे होते हैं। मिट्टी मूल है और घड़ा, सकोरा आदि उसके कार्य हैं।

इस इकाई में तात्पर्य के छः अंगों का विस्तृत अध्ययन करने के उपरान्त इससे सम्बन्धित आगे दिये गये बोध-प्रश्नों के उत्तर दे पाने में आप समर्थ हो सकेंगे।

5.4 पारिभाषिक शब्दावली

1) **उपस्थापना-** प्रस्तुतीकरण।

2) **कानीन-** कन्या का पुत्र।

3) **श्रवण-** शास्त्र उपदेश को गुरुमुख से सुनना।

4) **मनन-** गुरु द्वारा दिये गये उपदेश को भली-भांति विचार करना।

5) **निदिध्यासन-** गुरु द्वारा दिये गये उपदेश का बार-बार अभ्यास करना।

6) **उपक्रम-** किसी विषय के प्रारम्भ का कथन करना।

7) **उपसंहार-** किसी विषय के अन्तिम भाग का कथन करना।

8) **अभ्यास**- प्रतिपाद्य विषयवस्तु का मध्य-मध्य में प्रतिपादन करना।

9) **अपूर्वता-** जिसकी सिद्धि अन्य प्रमाणों द्वारा न हो, जो स्वयंसिद्ध हो, जैसे-ब्रह्म।

10) **फल-** आत्मज्ञान के लिये किते जाने वाले प्रयास।

11) **अर्थवाद-** किसी प्रकरण के प्रतिपाद्य में स्थान-स्थान पर की जाने वाली प्रशंसा।

12) **उपपत्ति-** ब्रह्म की सिद्धि में प्रस्तुत की जाने वाली युक्ति या तर्क।

13) **लिंग-** चिह्न

5.5 सन्दर्भग्रन्थ

1. भारतीय दर्शन का इतिहास लेखक- आचार्य बलदेव उपाध्याय, प्रकाशन- चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी, प्रथम संस्करण।
2. छान्दोग्योपनिषद्, प्रकाशन- गीता प्रेस, गोरखपुर।
3. सदानन्द योगीन्द्र का वेदान्तसार, व्याख्याकार- डॉ. आद्याप्रसाद मिश्र, प्रकाशन- अक्षयवट, 26, बलरामपुर हाउस, इलाहाबाद-211002। द्वितीय संस्करण, 2002 ई0।
4. वेदान्तपरिभाषा- श्रीधर्मराजाध्वरीन्द्र द्वारा रचित, सम्पादक- पं. श्रीत्रयम्बकराम शास्त्री, भाषानुवाद- स्वामी प्रज्ञानभिक्षु, प्रकाशन- चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी संस्करण 2019 ई0
5. वेदान्त भास्कर, ब्रह्म श्री स्वामी सुरेश्वराचार्य, प्रकाशन- हंसरुद आश्रम ट्रस्ट, गुजरात।
6. वेदान्त दर्शन, महर्षि वेदव्यास का ब्रह्मसूत्र, सम्पादक- श्री नन्दलाल दशोरा, प्रकाशन- रणधीर प्रकाशन हरिद्वार, संस्करण 2016 ई0

5.6 बोध-प्रश्न

1. तात्पर्य-निर्णय के अर्थ एवं अवधारणा का संक्षेप में उल्लेख करिये।
2. शंकर के अद्वैत वेदान्त के स्वरूप का विश्लेषण करिये।
3. वेदान्त दर्शन के विविध सम्प्रदाय पर का विस्तारपूर्वक वर्णन करिये।
4. तात्पर्य-निर्णय के दार्शनिक आधार पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।
5. तात्पर्य-निर्णय के छः अंग कौन -कौन हैं ? स्पष्ट करिये।